आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 2/अंक 3/सितंबर 2022
Received:08/09/2022; Accepted:13/09/2022; Published:24/09/2022

"हिन्दी प्रदेश के लोकगीतों में 1857 की अभिव्यक्ति"

दीपिका दत्त
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
ई- मेल: duttdeepika2015@gmail.com

दीपिका दत्त, "हिन्दी प्रदेश के लोकगीतों में 1857 की अभिव्यक्ति" , आखर हिंदी पत्रिका, खंड2/अंक 3/सितंबर 2022, (155-162)

शोध सार : जाति-धर्म, ऊँच-नीच और लिंग-भेद जैसी संकीर्ण भावनाओं को दरकिनार कर, अंग्रेज़ प्रशासन के खिलाफ़ संगठित होकर लड़ा गया 1857 का विद्रोह, भारतीय इतिहास की एक क्रान्तिकारी घटना है। हिन्दी प्रदेश की प्रायः सभी लोकभाषाओं में इस महान घटना से जुड़े लोकगीत रचे गए हैं। इन लोकगीतों में संग्राम के दौरान देश में घटी तमाम घटनाओं, आम जनता पर पड़े इसके प्रभावों, शहीद हुए वीरों और उनकी वीरता की कहानियों को अंकित किया गया है। सन् सत्तावन के लोकगीत वास्तव में लोक चेतना के प्रतीक हैं, ये लोक की सामाजिक-राजनीतिक जागरूकता के परिचायक हैं। ये लोक के अनुभवों की आँच में तपकर रचे गए हैं। इन गीतों में स्वाधीनता के लिए अंग्रेज़ों के खिलाफ़ विद्रोह का बिगुल फूँकने वाले वीरों और वीरांगनाओं के शौर्य की गाथाएँ, उनकी बहादुरी के क़िस्से आज भी सुने जा सकते हैं। 1857 की इस क्रान्तिकारी घटना के संबंध में इतिहासकारों द्वारा जितनी वरीयता लिखित साहित्य को दी गई है उतनी मौखिक साहित्य को नहीं मिली। जबकि उस दौर में रचे गए इन लोकगीतों में विद्रोह से जुड़ी कुछ अन्य अज्ञात घटनाओं और चरित्रों की जानकारी प्राप्त होने की संभावना है।

बीज शब्द : लोकगीत, स्वाधीनता संग्राम, विद्रोह, जन-चेतना, जन-मानस, साम्राज्यवाद, कूटनीति, बग़ावत, देशद्रोह, राष्ट्रीयता, क्रान्तिकारी, तटस्थ आदि।

शोध आलेख :

'लोकगीत' लोकभाषा में, लोक द्वारा, लोक के लिए सृजित वे गीत हैं, जिनमें जन-साधारण की भावनाएँ, अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ सहज-सामान्य रूप में अभिव्यक्ति पाती हैं। लोकगीतों में लोक-मानस का हृदय प्रतिध्वनित होता है। ये समाज की मौखिक सम्पत्ति कहे जाते हैं और इनका कोई एक विशिष्ट रचनाकार

नहीं होता। सामूहिक रूप से अभिव्यक्त होने के कारण लोक गीतकार की सत्ता, लोक की सत्ता में विलीन हो जाती है और गीत अपने रचनाकार से छूट कर पूरे लोक की संपदा बन जाता है। अस्तु, समूचा लोक ही इनकी रचना से जुड़कर आनंद का अनुभव करता है।

जन साधारण जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत विभिन्न विषयों पर लोकगीतों की रचना करता है। इन गीतों की अंतर्वस्तु लोक-जीवन से प्रेरित व अनुप्राणित होती है। दैनंदिन जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों, इच्छाओं, अनुभूतियों, आकांक्षाओं तथा हर्ष, शोक, भय, प्रेम, विरह आदि मनोभावों को व्यक्त करने के लिए लोक-मन लोकगीतों का आश्रय लेता है इसीलिए ये लोकगीत लोक-मानस के सर्वाधिक निकट पाए जाते हैं। इनमें रसानुभूति और भावों के साधारणीकरण की अपूर्व क्षमता विद्यमान होती है। गेय और संगीतात्मक होने के नाते ये गीत, असंख्य लोक कंठों में गूँजते रहते हैं और परम्परा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होते रहते हैं। 'धीरे बहो गंगा' की भूमिका में वासुदेवशरण अग्रवाल ने लोकगीतों के संदर्भ में उपयुक्त ही लिखा है कि "गीत मानों कभी न छीजने वाले रस के सोते हैं। वे कण्ठ से गाने के लिए और हृदय से आनंद लेने के लिए हैं।"[1]

हिन्दी प्रदेश की सभी लोकभाषाएँ लोकगीतों की दृष्टि से काफ़ी समृद्ध हैं और इन भाषाओं के लोकगीतों में 1857 की क्रान्तिकारी घटना की अनुगूँज बार-बार सुनाई देती है। वास्तव में 1857 का विद्रोह समूची उन्नीसवीं शताब्दी को आलोकित करने वाली एक बड़ी घटना है। इस विद्रोह की शुरुआत निश्चित रूप से कम्पनी सेना में कार्यरत भारतीय सिपाहियों की धार्मिक भावनाएँ आहत होने से हुई, लेकिन देखते ही देखते इन सिपाहियों को अंग्रेज़ों के निरंतर शोषण, दमनकारी नीतियों, आर्थिक लूट, ग़रीबी, अकाल, भुखमरी, बेरोज़गारी और अंग्रेज़ों के जातीय श्रेष्ठता के भाव से त्रस्त सामान्य जनता का सहयोग व समर्थन प्राप्त होने लगा। परिणामत: देश-भर के बाग़ी सिपाहियों के साथ किसान, मज़दूर, कारीगर, दस्तकार और आम जनता बड़े स्तर पर इस विद्रोह में विदेशी शासन से लोहा लेने कूद पड़ी। इससे स्पष्ट होता है कि इस महाविद्रोह के मूल में केवल भारतीय सैनिकों की असंतुष्टि नहीं थी, बल्कि अन्य समुदायों सहित साधारण जनता में भी अंग्रेज़ प्रशासन को लेकर गहरा असंतोष व्याप्त था। तत्कालीन लोकगीतों में जनता के इस असंतोष को वाणी मिली है। गीतकारों ने विद्रोह से जुड़े तमाम चरित्रों, घटनाओं और स्मृतियों को अपने लोकगीतों में सुरक्षित रखा है। हिन्दी प्रदेश में 1857 के विद्रोह से जुड़े वीरों पर रचे गए लोकगीतों की संख्या काफ़ी अधिक है। इनमें मंगल पाण्डेय, वीर कुँवर सिंह, रानी लक्ष्मी बाई, बेगम हज़रत महल, बहादुरशाह ज़फ़र, राजा देवीबख्श सिंह, राज्य बेनीमाधव सिंह, तात्यां टोपे, नाना साहेब इत्यादि पर सर्वाधिक लोकगीत रचे गए हैं।

वीर कुँवरसिंह सन् सत्तावन के विद्रोह के प्रसिद्ध चरित्रों में से एक थे। इन्होंने अंग्रेज़ों के साथ आरा का युद्ध लड़ा था, जो इतिहास की एक प्रसिद्ध घटना है। स्वतंत्रता की रक्षा हेतु अपने प्राणों की बाज़ी लगा देने वाले इस वीर योद्धा के संघर्ष, शौर्य, साहस और रण कौशल की गाथाएँ, भोजपुरी लोकगीतों में बिखरी पड़ी हैं। भोजपुरी क्षेत्र में फाग, बिरहा, कजरी, जाँत, पंवारे तथा धोबी जाति के कितने ही लोकगीत कुँवर सिंह के नाम

पर रचे मिलते हैं। कविता-कौमुदी के पाँचवे भाग में रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं कि "बिहार में कुँवरसिंह के गीत घर-घर में गाये जाते हैं। कितने ही बिरहे, कितने ही जाँत के गीत, कितने ही खेत के गीत कुँवरसिंह के नाम से प्रसिद्ध हैं, और जनता के मानस-पटल पर भारत की स्वतंत्रता का एक धुँधला प्रकाश ढ़ाले हुये हैं।"[ii] कहना न होगा कि भोजपुरी क्षेत्र के लोक गायकों ने अपने लोकगीतों के माध्यम से वीर कुँवरसिंह के चरित्र को अमर बना दिया है। यहाँ स्त्रियों द्वारा जाँत की धुन में गाया जाने वाला एक भोजपुरी लोकगीत उद्धृत है, जो वीर कुँवरसिंह के साहसपूर्ण कृत्यों का परिचय देने के साथ-साथ चमड़े से बने कारतूसों की घटना की ओर भी संकेत करता है :

"लिखिलिखि पतिया के भेजलिन कुँअरसिंह,
ए सुन अमर सिंह भाय हो राम।।
चमड़ा टोड़वा दांत से हो काटे कि
छत्तरी के धरम नसाय हो राम।।
बाबू कुँअरसिंह औ भाई अमरसिंह,
दोनों अपने हैं भाय हो राम।।
बतिया के कारण से बाबू कुँअरसिंह,
फिरंगी से राढ़ बढ़ाए हो राम।।"[iii]

राजस्थान की वीर प्रसूता वसुंधरा ने हिन्दुस्तान को बप्पा रावल, राणा कुम्भा, महाराणा सांगा तथा महाराणा प्रताप जैसे वीर योद्धा एवं रानी पद्मावती व रानी कर्णावती जैसी वीरांगनाएँ दीं, जिनके पराक्रम और शौर्य की गाथाओं से जनता का हृदय आज भी अभिभूत है। 1857 की क्रान्ति में भी राजस्थान की धरती पर जन्में कई वीर पुरुषों ने अपना योगदान दिया। अंग्रेज़ों के विरुद्ध संघर्ष का राजस्थान में नेतृत्व करने वाले आउवा ठाकुर कुशाल सिंह इस संग्राम के नायकों में से एक थे। स्वाधीनता प्राप्ति के महायज्ञ में अपने प्राणों की आहुति देने को प्रस्तुत आउवा ठाकुर के कुशल नेतृत्व में राजस्थान के गूलर, बाजावास सहित अन्य क्षेत्रों के ठाकुरों ने भी अंग्रेज़ों के साथ संघर्ष में हिस्सा लिया, किन्तु दुर्भाग्यवश इन वीरों को सफलता हाथ न लगी। पर इनकी असफलता से इनके शौर्य की कीर्ति ज़रा भी मलिन नहीं पड़ सकी। जनता ने इन्हें अपने हृदय में स्थान दिया और राणा प्रताप द्वारा प्रज्वलित की गई स्वाधीनता की लौ को मंद न पड़ने देने में, इन वीरों के योगदान को सदा के लिए अपनी स्मृतियों में क़ैद कर लिया :

"वांणिया वाणी गोचर मांय, काणी लोग पड़िया ओ
राजाजी रै भेणे तो, फिरंगी लड़ियो ओ, काली टोपी रो।
हें ओ काली टोपी रो, फिरंगी फैलाव कीधो ओ,
काणी टोपी रो।
बा'रली तोपां रा गोला, धूड़गढ़ में लागे ओ,
मांयली तोपां रा गोला, तंबू तोड़ै ओ,
भल्ले आउलो।"[iv]

स्वतंत्रता संग्राम के दौर में राजस्थानी लोकगीतों में आउवा ठाकुर कुशाल सिंह और डूंगजी-जवारजी के गीत लोगों की ज़ुबान पर चढ़े रहे। डूंगजी-जवारजी भी 1857 की जन-क्रान्ति से जुड़े महत्त्वपूर्ण चरित्रों में से

एक थे। ये अंग्रेज़ों के ठिकानों पर जाकर धन और वस्तुएँ लूटते और ग़रीब जनता में बाँट देते। अंग्रेज़ों की नज़र में बेशक ये बाग़ी, क्रांतिकारी और विद्रोही थे लेकिन लोक के लिए वे फ़िरंगियों के शत्रु और स्वतंत्रता प्रेमी थे। इनके साहसपूर्ण कारनामों और परोपकार के कई क़िस्से उस समय के राजस्थानी लोकगीतों में दर्ज हैं। यहाँ डूंगजी-जवारजी पर रचे गए गीतों से एक उदाहरण दृष्टव्य है :

"सात सवारां नीसरया, वे हुया कतारां लार,
चलती बोरी काट दी, वा मूंगा दया खिंड़ाय।
चुग चुग हारया बालदी, चुग चुग छक्या गवाल,
चुग चुग दुनिया धापगी, वा जै बोलती जाय..."[v]

अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह का बिगुल फूँकने में बुंदेलखंड क्षेत्र का विशेष योगदान रहा। यहाँ जैतपुर के युवराज पारीछत, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, झलकारी बाई, जबलपुर के गोंड राजा शंकर शाह, उनके पुत्र रघुनाथ शाह, वीर श्यामलगिरी गुसांई जैसे वीरों और वीरांगनाओं के अदम्य साहस और शौर्य का परिचय देने वाले बहुत से लोकगीत रचे गए। झाँसी की लड़ाई में अग्रेज़ी सेना का निर्भयतापूर्वक सामना करने वाली रानी लक्ष्मीबाई की प्रशस्ति में एक से बढ़कर एक लोकगीतों का सृजन हुआ। स्त्री सेना का गठन करने और अपनी शक्ति, मनोबल तथा युद्ध कौशल के दम पर अंग्रेज़ों को कड़ी टक्कर देने वाली वीरांगना लक्ष्मीबाई की छवि लोक में 'मर्दानी' के रूप में प्रसिद्ध हुई। आज भी जन-समान्य उन्हें इसी रूप में याद करता है-

"बुर्जन बुर्जन तोप लगे दिन, गोला चलै आसमानी।
सगरै सिपाहिन को पेड़ा जलेबी, अपने चवाम गुड़धानी।
छोड़ मोर्चा लस्कर को धागी, ढूँढ़े मिलै न पानी।
खूब लड़ी मरदानी आरे, झांसी वाली रानी।"[vi]

सर्वविदित है कि उत्तर-प्रदेश के मेरठ से अंग्रेज़ों के खिलाफ़ इस विद्रोह की चिंगारी फूटी। अतः विद्रोह की जन्मभूमि होने के कारण पश्चिमोत्तर प्रांत में इस क्रांतिकारी घटना से संबंधित लोकगीत बहुतायत में रचे गए। विद्रोह से जुड़े ज्ञात-अज्ञात सिपाहियों, छोटी-बड़ी घटनाओं तथा अनेकानेक गतिविधियों की छाप इस प्रदेश के लोकगीतों में देखने को मिलती है। संडीले के राजा गुलाबसिंह ने भी क्रांतिकारियों के साथ इस लड़ाई में भाग लिया था। इनके पराक्रम और बलिदान की गाथाएँ तत्कालीन लोकगीतों में सुनी जा सकती हैं। एक अवधी लोकगीत में राजा गुलाबसिंह के द्वारा लड़े गए युद्धों और उनकी विजय की स्मृतियों को कुछ इस प्रकार संभाल कर रखा गया है :

"राजा गुलाबसिंह रहिया तोरी हेरूं
एक बार दरश दिखावा रे
अपनी गढ़ी से यह बोले गुलाबसिंह,
सुन रे साहब मोरी बात रे
पैदल भी मारे सवार भी मारे,
मारी फौज बेहिसाब रे
* * *
पहली लड़ाई लखनतगढ़ जीते,

दूसरी लड़ाई रहीमाबाद रे
तीसरी लड़ाई संडीलवा में जीते,
जामू में कीना मुकाम रे"[vii]

1857 का विद्रोह जाति-धर्म, वर्ग और लिंग भेद जैसी सभी संकीर्णताओं से ऊपर उठकर, एक-जुट होकर लड़ा गया था। इस दौरान मेरठ और उसके आस-पास के क्षेत्रों जैसे दिल्ली, कुरुक्षेत्र, गाज़ियाबाद, बुलंदशहर, बिजनौर के साथ ही लखनऊ, कानपुर, बरेली, ग्वालियर, बिहार आदि इलाकों में विद्रोह की लपटें तेज़ी से फैलीं। इतिहास प्रमाण है कि जब विभिन्न कारणों से ब्रिटिश बल के समक्ष विद्रोह असफल हो गया, तब अंग्रेज़ों के दमन का सर्वाधिक शिकार इन्हीं प्रदेशों को होना पड़ा। इस लड़ाई में भाग लेने वाले सिपाहियों को कठोर यातनाएं सहनी पड़ीं, गाँवों में आगजनी की घटनाओं में बढ़ोतरी हुई, शहीदों के परिवारों को कठोर दण्ड भोगना पड़ा आदि-आदि। लोक-मन अपने ही देशवासियों पर अंग्रेज़ों द्वारा किए जा रहे इन क्रूर अत्याचारों का गवाह बन रहा था। वह जान चुका था कि हिन्दुस्तान पर राज कर रहे ये विदेशी शासक साम्राज्यवादी लुटेरे हैं। आश्चर्य नहीं कि लोकगीतों के निर्माताओं ने अपने गीतों में उनका इसी रूप में चित्रण किया है। ब्रज प्रदेश के एक लोकगीत में अंग्रेज़ों को 'फ़िरंगी डाकू' कहकर संबोधित किया गया है :

"री बहिना मेरी भारत में फिरंगी डाकू धंसि गए.
जिन्ने डारी ये लूट मचाय. री बहिना मेरी...
री बहिना मेरी माल खजाने सबु ले गए.
जिन्ने दीने ए लोट चलाय. री बहिना...
री बहिना मेरी गायन के खिरक खाली है गए.
जिन्ने दीनी ए सब कटवाय. री बहिना...
री बहिना मेरी दूध दही सुपनो है गयो.
दुरलभ है गई छाछ. बहिना मेरी..."[viii]

अवधी का एक लोकगीत मिलता है जिसमें सन् सत्तावन के संग्राम में लखनऊ को फ़िरंगियों द्वारा लूटे जाने और क़ब्ज़ा की जाने का वर्णन किया गया है। इसमें मुख्य रूप से अग्रेज़ों द्वारा वाजिदअली शाह की गद्दी छीन कर उन्हें लखनऊ से निष्कासित कर दिए जाने का उल्लेख हुआ है। प्रस्तुत लोकगीत में वाजिदअली शाह की प्रजा और उनकी बेगमों के हृदय विदारक विलाप का मार्मिक चित्र खींचा गया है-

"गलियन गलियन रैयत रोवै,
इटियन बनिया बजाज रे।
महल में बैठी बेगम रोवै,
डेहरी पर रोवै खवास रे।
मोती महल के बैठी छूटी,
छूटी है मीना बजार रे।
बाग जमनिया की सैरें छूटी,
छूटे मुलुक हमार रे।"[ix]

अंग्रेज़ी सेना के लिए '1857' विद्रोह था, इसमें भाग लेने वाले बाग़ी और क्रांतिकारी थे, जो सत्ता के खिलाफ़ बग़ावत करने के जुर्म में सज़ा के अधिकारी थे। एक लोकगीत में दर्शाया गया है कि विद्रोह के असफल हो जाने के बाद अंग्रेज़ अधिकारियों ने स्वतंत्रता, स्वाधीनता, सुराज या आज़ादी जैसे शब्दों का नाम तक न लेने की मुनादी करा डाली और बुन्देलखंड के गाँवों को अंग्रेज़ों के दमन-शोषण का शिकार होना पड़ा :

"बुंदेलखंड के गांउन-गांउन, फेर ढ़ोड़ेर पिटवाओ.
जो सुराज की नाम लेवेगें, तो हम कीला ठुकवाओ.
गांवन-गांवन पी.ए. फिशर नें करो दमन भौंतई भारी.
अंग्रेजन के गुलाम राजा, तिनके हम गुलाम भारी.."[x]

हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी हुकूमत कायम होने के बाद देश की राजनीति, सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था और सांस्कृतिक जीवन सभी क्षेत्रों में व्यापक स्तर पर परिवर्तन की प्रक्रिया घटित हुई। उन्नीसवीं सदी के बड़े-बड़े चिंतकों और बुद्धिजीवियों के साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में बसा साधारण जन समाज भी देश में घट रही विभिन्न छोटी-बड़ी घटनाओं पर न केवल नज़र बनाए हुए था, बल्कि लोकगीतों के ज़रिये उन्हें इतिहास में दर्ज भी कर रहा था। हिन्दी प्रदेश की लोकभाषाओं में रचित लोकगीतों का अवलोकन करने से भारत में अंग्रेज़ों के आगमन के बाद आए बदलावों पर प्रकाश पड़ता है। लोक-मानस ने इन गीतों में अंग्रेज़ों की कूटनीतिक चालों, फूट, देश की आर्थिक दुरावस्था तथा ज़मींदारों के शोषण, अनेक प्रकार के कर और लगानों से त्रस्त किसानों के कष्टों और उनकी बिगड़ती आर्थिक स्थिति का यथार्थ वर्णन किया है। इस प्रकार के लोकगीत निस्संदेह लोक-चेतना के अच्छे उदाहणों में गिने जा सकता हैं। एक लोकगीत में यह भाव व्यक्त किए गए हैं कि फ़िरंगियों ने देश में जगह-जगह अपनी छावनियाँ बना लीं, इन कूटनीतिक शिरोमणियों ने षड्यंत्रों के सहारे भाई-भाई में फूट पैदा कर, सामूहिक एकता को कमज़ोर कर दिया। अपनी नीतियों से देश के उद्योग धंधे चौपट कर डाले जिससे रोज़गार का अभाव और बेगारी की स्थिति उत्पन्न हुई। ऐसी बदहाल स्थिति में घोड़े घास को और भूखे बालक दाने अर्थात भोजन को तरसते हैं। महलों की ठकुरानियाँ अपने पति तथा माताएँ अपने पुत्रों के लिए विलाप करती हैं :

"देस में अंगेज़ आयो कांई कांई लायो रे
फूट नांखी भायां में बेगार लायो रे
काली टोपी रो हां हां कालीं टोपी रो
देस रे छावणियां नाखे रे काली टोपी रो
घोड़े रोवे घास ने टाबरिया रोवे दाणा ने
बुरजा में ठुकराण्या रोवे जामण जाया ने
के रोलो वापरियो वा' वा रोलो वापरियो
देस में अंगेज़ आयो रे के रोलो वापरियो"[xi]

सन् सत्तावन के विद्रोह से संबंधित लोकगीतों के अध्ययन से यह बात सामने आती है कि स्वाधीनता की पहली लड़ाई कहे जाने वाले इस जनविद्रोह की नाकामी के पीछे अपने ही देश के कुछ गद्दार राजाओं, सामंतों

और जमींदारों का विशेष हाथ रहा। इन लोगों ने तुच्छ स्वार्थों के लिए अपने ही देशवासियों के साथ विश्वासघात कर अंग्रेज़ों को सहयोग दिया। 'रामा हो गइले देशद्रोहिया रे ना, रामा मिलि गइले आयर के संगवा रे ना' या 'रामा देशवा के कुछ त अदमियाँ रे ना, रामा भइले देश के द्रोहिया रे ना' जैसे लोकगीत इस ओर संकेत करते हैं कि विद्रोह को कमज़ोर बनाने में देश के इन दुश्मनों ने बड़ी भूमिका निभाई। तत्कालीन लोकगीतों में ऐसे दग़ाबाज़ों को जमकर धिक्कारा गया है जिनके कारण स्वाधीनता के लिए किया गया पहला बड़ा जन-विद्रोह सफल नहीं हो सका। 1857 के गद्दारों को बेपरदा करता, खड़ी बोली में रचित एक लोकगीत दर्शनीय है :

"सूबे के राजवार फिरंगी से मिल गये।
जितने लड़े समर में सब उत्तर चले गये।
दो एक निमक हराम किरिस्तान हो गये।
सदहा लड़ाई मारि कै राना निकल गये।
अंग्रेज मारे खौफ के हथियार ले लिया।"
क्या पूछते हो यार जमाना बदल गया।[xii]

इस तरह वाचिक साहित्य के रचनाकारों ने निष्पक्षता और निर्भीकता के साथ क्रांति से जुड़े अपने अनुभवों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। यही कारण है कि 1857 के इन लोकगीतों में यदि अंग्रेज़ों के खिलाफ़ संघर्ष में सहयोग देने वाले वीर पुरुषों और वीरांगनाओं की हिम्मत, बहादुरी और निडरता की प्रशंसा की गई है तो अंग्रेज़ों की शक्ति और उनके युद्ध कौशल की सराहना और देशद्रोहियों की आलोचना भी। सीधे शब्दों में कहें तो इन लोकगीतों के निर्माताओं ने अपने समय की हर घटना, हर स्थिति और हर अनुभव को बिना किसी लाग-लपेट के, अपने गीतों में दर्ज कर लिया है। जो निश्चित तौर पर इन लोकगीतकारों की तटस्थता को दर्शाता है।

अंततः हिन्दी प्रदेश के लोकगीतों में 1857 के विद्रोह की व्यापक रूप में अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम कही जाने वाली इस क्रान्ति से जुड़ी बहुत सी घटनाएँ, मौखिक परंपरा द्वारा इन लोकगीतों में सुरक्षित रह गई हैं। सन् सत्तावन से जुड़े लोकगीत इस बात के प्रमाण हैं कि विद्रोह के असफल हो जाने के बाद भी अंग्रेज़ों की विजय जनता का मनोबल नहीं तोड़ पाई थी। सामान्य जन-मानस विद्रोह की असफलता से निराश भले ही हो, हतोत्साहित नहीं हुआ था। बल्कि वह तो अपने देश के उन वीरों की शौर्य गाथाओं को शब्दबद्ध करने में मनोयोग से लगा हुआ था, जिन्होंने स्वाधीनता की इस व्यापक लड़ाई में अंग्रेज़ प्रशासन की जड़ें हिला कर रख दी थीं और उनके खिलाफ़ विद्रोह कर स्वाधीनता का शंखनाद किया था। यही कारण है कि विद्रोह से संबंध रखने वाले वीरों और नायकों को केंद्र में रखकर सर्वाधिक मात्र में लोकगीत रचे गए हैं। इसके अलावा इन लोकगीतों में बहुत से ऐसे तथ्यों और जानकारियों को भी दर्ज कर लिया गया है जिनका उल्लेख हमें किताबों में नहीं मिलता। इस प्रकार विद्रोह से संबंधित अनेक अच्छी-बुरी स्मृतियों को लोक-मानस ने इन लोकगीतों में ढाल कर अमर कर दिया है। इस प्रकार ये लोकगीत लोक-चेतना के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इनमें अंग्रेज़ों के प्रति जन-आक्रोश के स्वर हैं, स्वाधीनता की चाह है, शौर्य प्रदर्शन का आग्रह है तथा देशप्रेम और राष्ट्रीयता की भावना भी।

संदर्भ सूची :

[i] देवेन्द्र सत्यार्थी, धीरे बहो गंगा, राजकमल प्रकाशन, 1948, दिल्ली, पृ. 9

[ii] रामनरेश त्रिपाठी (संपादक), कविता-कौमुदी (पाँचवाँ भाग), हिन्दी-मंदिर, प्रयाग, पृ. 268

[iii] देवेन्द्र सत्यार्थी, धीरे बहो गंगा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1948, पृ. 113

[iv] पूर्णिमा गहलोत (संपादक), राजस्थानी लोकगीत, यूनिक ट्रेडर्स, जयपुर, 1971, पृ. 166

[v] डॉ. पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, राजस्थानी लोकगीत, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, 1968, पृ. 90

[vi] डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, पृ. 316

[vii] देवेन्द्र सत्यार्थी, धीरे बहो गंगा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1948, पृ. 116

[viii] मैनेजर पाण्डेय (संपादक), लोकगीतों और गीतों में 1857, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2017, पृ. 8

[ix] कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, पृ. 317

[x] देवेन्द्र सत्यार्थी, धीरे बहों गंगा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1948, पृ. 115

[xi] पूर्णिमा गहलोत (संपादक), राजस्थानी लोकगीत, यूनिक ट्रेडर्स, जयपुर, 1971, पृ. 167

[xii] मैनेजर पाण्डेय (संपादक), लोकगीतों और गीतों में 1857, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2017, पृ. 79

****